खण्ड – 4 : सिद्धान्त और वाद

इकाई – 2 : मार्क्सवाद

इकाई की रूपरेखा

4.2.0. उद्देश्य
4.2.1. प्रस्तावना
4.2.2. मार्क्सवाद क्या है ?
4.2.3. मार्क्सवाद की मुख्य स्थापनाएँ
  4.2.3.1. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
  4.2.3.2. ऐतिहासिक भौतिकवाद अर्थात् इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या
  4.2.3.3. वर्ग और वर्ग-संघर्ष
  4.2.3.4. अलगाव और वस्तुकरण
4.2.4. मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र
4.2.5. मार्क्सवादी साहित्य-चिन्तन
  4.2.5.1. मार्क्सवादी साहित्य-चिन्तन का प्रस्थान-बिन्दु
  4.2.5.2. 'आधार' और 'अधिरचना' के पारस्परिक सम्बन्धों की समस्या
  4.2.5.3. साहित्य और विचारधारा
  4.2.5.4. अन्तर्वस्तु और रूप
4.2.6. पाठ का सारांश
4.2.7. उपयोगी पुस्तकें और सन्दर्भ
  4.2.7.1. हिन्दी की पुस्तकें
  4.2.7.2. अंग्रेज़ी पुस्तकें
  4.2.7.3. इंटरनेट स्रोत
4.2.8. अभ्यास के लिए प्रश्न

4.2.0. उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

4.2.0.1. मार्क्सवाद की मूल स्थापनाओं को समझ पाएँगे।

4.2.0.2. मार्क्सवादी साहित्य-चिन्तन की मुख्य विशेषताओं के बारे में जान पाओगे।

4.2.0.3. मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

4.2.0.4. मार्क्सवाद की विभिन्न धाराओं की जानकारी प्राप्त कर पाएँगे।

4.2.1. प्रस्तावना

इस पाठ में आप मार्क्सवाद और मार्क्सवादी साहित्य एवं कला-दृष्टि का अध्ययन करेंगे। मार्क्सवादी साहित्य-सिद्धान्त वर्ग-संघर्ष को केन्द्र में रखते हुए साहित्य के माध्यम से वर्ग-भेद को उजागर करने पर बल देता है। मार्क्सवाद के सैद्धान्तिक आधारों से निष्पन्न साहित्यिक सिद्धान्तों ने आर्थिक उत्पादन और साहित्य के मध्य सम्बन्धों को समझने की दिशा में बहुविध प्रयास किए हैं। इतिहास और समाज की मार्क्सवादी व्याख्या और समझ का साहित्य-सृजन और आलोचना पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। 'आलोचनात्मक सैद्धान्तिकी' (क्रिटिकल थियरी), 'नव-इतिहासवाद', 'सांकृतिक भौतिकवाद', 'उत्तर संरचनावाद', 'उत्तर आधुनिकतावाद', 'स्त्रीवादी आलोचना' और 'संस्कृति अध्ययन' सहित अन्य कई साहित्यिक सिद्धान्त अपने मौलिक चिन्तन के लिए मार्क्सवाद के ऋणी हैं। मार्क्सवादी आलोचना अपने इस विश्वास के कारण अन्य आलोचना पद्धतियों से अलग है कि साहित्य एक सामाजिक और भौतिक कार्य है जो अन्य सामाजिक कार्यों और गतिविधियों से जुड़ा हुआ है। कला और साहित्य की कृतियों को इन्हीं सन्दर्भों में सही-सही समझा जा सकता है, व्याख्यायित किया जा सकता है।

4.2.2. मार्क्सवाद क्या है ?

जर्मनी के कार्ल मार्क्स (1818-1883) और फ्रेडरिक एंगल्स (1820-1895) मार्क्सवाद के संयुक्त संस्थापक थे। मार्क्स एक वकील के पुत्र थे। उन्हें अपने लेखन के क्रान्तिकारी तेवरों के कारण जर्मनी से निष्काषित कर दिया गया था। उन्हें फ्रांस और बेल्जियम में शरण मिली लेकिन कुछ समय के बाद वहाँ से भी उन्हें देश निकाला दे दिया गया। 1949 से अपनी मृत्यु (1883) तक मार्क्स ने लंदन में रहकर ही प्रवासी जीवन बिताया। फ्रेडरिक एंगल्स को वस्त्र मिल में काम करने के लिए 1842 में जर्मनी छोड़ कर मैंचेस्टर में रहना पड़ा। बाद में फ्रांस में 1844 में इनकी मुलाक़ात मार्क्स से हुई और इन्होंने मिलकर लिखना शुरू किया। इंग्लैंड में रहते हुए दोनों ने मार्क्सवाद के आधारभूत ग्रन्थ लिखे। इनका मुख्य ध्यान उद्योगों और यातायात के साधनों आदि को निजी अधिकार के स्थान पर राज्य के अधिकार में संचालित करने पर केन्द्रित था। स्वयं इन दोनों ने अपने आर्थिक विचारों को कम्युनिज़्म कहा है, जिसकी घोषणा उन्होंने कम्युनिस्ट मैनिफ़ैस्टो में 1848 में की थी। इनके सिद्धान्तों को 'मार्क्सवाद' के रूप में बाद के चिन्तकों ने प्रस्तुत किया। मार्क्सवाद का उद्देश्य उत्पादन, वितरण और विनिमय के साधनों पर सामूहिक अधिकार के आधार पर एक वर्ग विहीन समाज की स्थापना करना था। मार्क्सवाद एक भौतिकवादी दर्शन है। जहाँ अन्य दर्शन केवल समाज और जीवन की व्याख्या ही करते हैं, मार्क्सवाद उसे बदलने का सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। आरम्भिक मार्क्सवादी चिन्तन पर हीगल आदि अठ्ठारहवीं सदी के जर्मन दार्शनिकों का प्रभाव रहा है। मार्क्स ने कहा है कि उसने हीगल के द्वन्द्ववाद को, जो सिर के बल खड़ा था, सीधा खड़ा किया है।

कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगल्स मार्क्सवाद के मुख्य प्रणेता थे। मार्क्सवाद का उद्देश्य उत्पादन, वितरण और विनिमय के साधनों के सामूहिक स्वामित्व के आधार पर वर्ग रहित समाज का निर्माण करना है। मार्क्सवाद

एक भौतिकवादी चिन्तन है जो जीवन और जगत् की व्याख्या प्रकृति में मौजूद पदार्थ अर्थात् भूत द्रव्य के आधार पर करता है। उसके अनुसार संसार में पदार्थ के अलावा प्रकृति से बाहर किसी दूसरी सत्ता का अस्तित्व नहीं है। मार्क्सवाद इस आधार पर न केवल दुनिया को समझने का दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है बल्कि उसे बदलने का सिद्धान्त भी देता है। मार्क्सवाद के अनुसार समाज का विकास और उसमें परिवर्तन समाज के अलग-अलग वर्गों – शोषक (पूंजीपति) और शोषित (सर्वहारा या मज़दूर) – के बीच संघर्ष के कारण होता है। इस संघर्ष में अन्ततः शोषित अर्थात् सर्वहारा वर्ग की जीत होती है और एक वर्ग रहित समाज का आविर्भाव होता है।

4.2.3. मार्क्सवाद की मुख्य स्थापनाएँ

मार्क्सवाद दार्शनिक, आर्थिक और राजनीतिक-सामाजिक विचारों की एक पद्धति है, जो इतिहास की द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक व्याख्या करके मानव-समाज के विकास को समझने तथा मनुष्य-जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने हेतु एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। वैचारिक जगत् में जिस सिद्धान्त को मार्क्सवाद के नाम से जाना जाता है उसकी पहली उद्घोषणा कार्ल मार्क्स की रचना 'जर्मन विचारधारा' में 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' की संकल्पना के साथ हुई थी। मार्क्स ने आगे चलकर फ्रेडरिक एंगल्स के साथ मिलकर 'कम्युनिस्ट मैनिफ़ैस्टो' में वर्ग-संघर्ष की अवधारणा प्रस्तुत की। 'कैपिटल' के तीन भागों में मार्क्स ने तर्क प्रस्तुत किया कि इतिहास की दिशा और गति आर्थिक कारणों से तय होती है। मार्क्स और एंगल्स ने अपनी संयुक्त और अलग-अलग रचनाओं में एक वैज्ञानिक विश्व-दृष्टि का निर्माण किया और समाज के क्रान्तिकारी बदलाव का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। उनके विशाल लेखन से उपलब्ध सिद्धान्त को ही मार्क्सवाद कहा जाता है। इसके सुसंगत प्रस्तुतीकरण और मुख्य मान्यताओं के विकास में बीसवीं सदी के अनेक चिन्तकों का योगदान है। आइये अब हम मार्क्सवाद की मुख्य स्थापनाओं पर विस्तार से विचार करें।

4.2.3.1. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

मार्क्स के अनुसार द्वन्द्ववाद बाह्य जगत् और मानवीय विचारों की गति के सामान्य नियमों का विज्ञान है। इसकी मान्यता है कि प्रकृति का विकास या परिवर्तन एक अचूक नियम है। वह किसी अलौकिक शक्ति से नहीं, बल्कि अपने ही नियमों के अन्तर्गत उच्चतर अवस्था की ओर विकसित होती है। विकास या परिवर्तन भौतिक पदार्थ में अन्तर्निहित विरोध की एक स्वाभाविक प्रक्रिया के अन्तर्गत होता है जिसमें 'वाद', 'प्रतिवाद" और 'संवाद', ये तीन अवस्थाएँ होती हैं। विकास के एक बिन्दु तक पहुँचकर परिवर्तन एकदम तीव्रता से घटित होते हैं। सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ में यही क्रान्ति की स्थिति होती है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की मुख्य स्थापना यह है कि यह जगत् भौतिक है, उसमें भूतद्रव्य (भौतिक तत्त्व या पदार्थ) और उसकी गति तथा परिवर्तन के नियमों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वह प्रत्ययों के अस्तित्व को अस्वीकार करता है। द्वन्द्वात्मक भौतिवाद के अनुसार प्रकृति एक सुसम्बद्ध और पूर्ण समग्रता है, जिसमें विभिन्न वस्तुएँ और घटनाएँ परस्पर जुड़ी हुई होती हैं तथा एक-दूसरे पर निर्भर और एक-दूसरे से निर्धारित होती हैं। संसार

की सभी घटनाओं में एक अद्भुत अन्त:सम्बन्ध और अन्त:निर्भरता होती है, इसलिए इतिहास और सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन भी इसी परिप्रेक्ष्य में करना चाहिए।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधारभूत पहलू इस प्रकार हैं :

(1) पदार्थ सदैव गतिशील है। यहाँ गति का अर्थ पदार्थ की प्रत्येक प्रकार की क्रिया से है। समस्त ऊर्जा गतिमय पदार्थ के कारण है। विचार और भाव भी गति अर्थात् मस्तिष्क की क्रिया के परिणाम हैं।
(2) विश्व को वस्तुओं के एक समूह के रूप में नहीं बल्कि प्रक्रियाओं के एक समूह के रूप में देखा जाना चाहिए।
(3) सब वस्तुओं और प्रक्रियाओं में निरन्तर परिवर्तन हो रहा है। प्राकृतिक प्रक्रियाएँ और सामाजिक, ऐतिहासिक प्रक्रियाएँ सभी में परिवर्तन हो रहा है।
(4) सभी वस्तुएँ और प्रक्रियाएँ अन्त: सम्बद्ध और परस्पर निर्भर हैं। सभी वस्तुएँ और प्रक्रियाएँ विपरीत और अन्तर्विरोधी हैं, लेकिन उनमें विपरीतों की एकता होती है। विकास सदैव इन विपरीतों के पारस्परिक संघर्षों के कारण ही होता है।
(5) विकास की प्रक्रिया निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर होती है। विकास की प्रक्रिया में पहले मात्रात्मक परिवर्तन होता है, बाद में एक अवस्था ऐसी आती है जब यह मात्रात्मक परिवर्तन गुणात्मक परिवर्तन में बदल जाता है।

4.2.3.2. ऐतिहासिक भौतिकवाद अर्थात् इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या

ऐतिहासिक भौतिकवाद मानव-इतिहास और समाज के विकास को समझने का व्यावहारिक सिद्धान्त है, जो इस प्रश्न का उत्तर देता है कि कौनसा भौतिक प्रभाव है जो इतिहास की घटनाओं का संचालन और नियमन करता है। 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' का सिद्धान्त 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' के सिद्धान्त से जुड़ा हुआ है, बल्कि एक के बिना दूसरा अधूरा है। एंगल्स ने मार्क्स को इस सिद्धान्त का उद्भवकर्ता होने का श्रेय दिया है, तो मार्क्स ने लिखा है कि इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की अवधारणा एंगल्स ने विकसित थी।

मार्क्स और एंगल्स ने अपनी विख्यात कृति 'जर्मन विचारधारा'(1846) में पहली बार यह विचार प्रस्तुत किया था कि सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं में परिवर्तन वस्तुगत नियमों के अन्तर्गत होता है। वस्तुगत नियमों के अनुसार ही एक सामाजिक और आर्थिक संरचना का स्थान दूसरी सामाजिक और आर्थिक संरचना लेती है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद को संक्षेप में इस प्रकार समझा जा सकता है :

मार्क्सवाद के अनुसार मानव इतिहास का निर्माता है। वह इतिहास का निर्माण तभी कर सकता है जब उसका जीवन और अस्तित्व बना रहे। मनुष्य का अस्तित्व दो बुनियादी बातों पर निर्भर करता है– एक, जीवित

रहने के साधनों, अर्थात् 'भौतिक मूल्यों', जैसे भोजन, वस्त्र, आवास आदि का उत्पादन, तथा दूसरा, संतानोत्पत्ति, ताकि समाज की निरन्तरता बनी रह सके। 'भौतिक मूल्यों' को जुटाने के लिए मानव को उत्पादन करना होता है।

उत्पादन के लिए मनुष्य किसी न किसी उत्पादन-प्रणाली को अपनाता है। उत्पादन-प्रणाली के दो पक्ष होते हैं, एक उत्पादन के उपकरण या प्रौद्योगिकी – जिसमें वे वस्तुएँ या औज़ार जिनसे मनुष्य काम करता है तथा मनुष्य का ज्ञान, श्रम और कौशल शामिल हैं, और दूसरा उत्पादन के सम्बन्ध, जो उत्पादन के कार्य में लगे लोगों के बीच में पैदा होते हैं। एक उत्पादन-प्रणाली एक विशेष प्रकार के सम्बन्धों को जन्म देती है जो दूसरे प्रकार की उत्पादन-प्रणाली से भिन्न होते हैं। मार्क्सवाद के अनुसार उत्पादन-प्रणाली में परिवर्तन से उत्पादन-सम्बन्धों में परिवर्तन होता है। उत्पादन-सम्बन्धों के योग से ही समाज की आर्थिक संरचना का निर्माण होता है और आर्थिक संरचना ही वह नींव या 'आधार' है जिस पर समाज की 'अधिरचना' अर्थात् सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक संरचनाएँ तथा विश्वास, कलाएँ, प्रथाएँ, विज्ञान एवं दर्शन टिके हुए हैं। आर्थिक संरचना अर्थात् 'आधार' में परिवर्तन होने से 'अधिरचना' में परिवर्तन होता है, इसी को सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है। इस परिवर्तन में वर्ग-संघर्ष की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

4.2.3.3. वर्ग और वर्ग-संघर्ष

ऊपर हमने देखा कि मार्क्सवादी चिन्तन के अनुसार 'आधार' में परिवर्तन होने पर ही 'अधिरचना' में परिवर्तन होता है, क्योंकि 'अधिरचना' आधार पर निर्भर होती है। अर्थात् 'अधिरचना' समाज के आर्थिक 'आधार' द्वारा निर्धारित होती है। हम यह भी जानते हैं कि मार्क्सवाद समाज की व्याख्या से अधिक उसे बदलने का सिद्धान्त है। यह परिवर्तन वर्ग-संघर्ष की चरम परिणति पर वर्ग विहीन समाज की स्थापना के रूप में अभिकल्पित किया गया है।

मार्क्सवाद के अनुसार साधारणत: व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है किन्तु अधिक स्पष्ट रूप में वह एक 'वर्ग प्राणी' है। वर्ग ऐसे लोगों के समूह को कहेंगे जो अपनी जीविका एक ही ढंग से अर्जित करते हैं। वर्गों का जन्म उत्पादन के साधनों पर निर्भर है। जैसे-जैसे उत्पादन के साधनों में परिवर्तन होता जाता है वैसे-वैसे नए वर्गों का जन्म भी होता जाता है। आर्थिक उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर समाज में परस्पर विरोधी वर्ग रहे हैं – एक शोषक और दूसरा शोषित। ये दोनों वर्ग परस्पर संघर्षरत रहे हैं।

मार्क्स और एंगल्स ने 'कम्युनिस्ट मैनिफ़ैस्टो' में लिखा है कि "अब तक के सभी समाजों का इतिहास वर्ग-संघर्ष का ही इतिहास है। स्वतंत्र व्यक्ति और दास, कुलीन वर्ग और साधारण जनता, सामन्त और अर्द्धदास किसान, श्रेणिपति और दस्तकार, एक शब्द में शोषक और शोषित; सदा एक दूसरे के विरोधी होकर कभी प्रत्यक्ष तो कभी अप्रत्यक्ष किन्तु अनवरत संघर्ष करते रहे हैं। इस संघर्ष का अन्त हर बार या तो समाज के क्रान्तिकारी पुनर्निर्माण में हुआ है या संघर्षरत वर्गों के सर्वनाश में।" इस कथन से स्पष्ट है कि मार्क्स सभी समाजों में वर्ग और वर्ग-संघर्ष को एक ऐतिहासिक सत्य मानते हैं। वर्ग-संघर्ष के सिद्धान्त की तीन बातें महत्त्वपूर्ण हैं –

(1) विभिन्न वर्गों का अस्तित्व उत्पादन के विकास के किसी ऐतिहासिक क्रम विशेष से जुड़ा हुआ होता है।

(2) वर्ग-संघर्ष का चरमोत्कर्ष आवश्यक रूप से सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व होता है।

(3) अधिनायकत्व की यह अवस्था अपने आप में सभी वर्गों के उन्मूलन और वर्गहीन समाज की ओर संक्रमण करने की अवस्था होती है।

इस प्रकार विरोधी वर्गों के मध्य अन्तर्विरोधों का इस स्तर तक तीव्र हो जाना कि परिवर्तन अवश्यम्भावी हो जाता है अर्थात् क्रान्ति घटित हो जाती है, ऐतिहासिक परिवर्तन को समझने का मुख्य बिन्दु है। उत्पीड़क या शोषक वर्ग के विचारों के विरुद्ध विचारधारात्मक संघर्ष वर्ग-संघर्ष का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। वर्गों के उन्मूलन के लिए क्रान्ति केवल आर्थिक क्षेत्र तक सीमित नहीं होती है , क्योंकि किसी भी क्रान्ति में निर्णायक प्रश्न राज्य-सत्ता का प्रश्न है। वास्तविक संघर्ष राजनीतिक क्षेत्र में है। जब पुराने उत्पादन सम्बन्धों का प्रतिनिधित्व करने वाले शासक वर्ग की हार होती है और उदीयमान उत्पादन प्रणाली का प्रतिनिधित्व करने वाले नए वर्ग सत्ता पर अधिकार कर लेते हैं तब क्रान्ति पूर्ण रूप से तभी सफल होती है।

4.2.3.4. अलगाव और वस्तुकरण

मार्क्स के अनुसार मानव इतिहास के दो प्रमुख पक्ष हैं : एक, यह मनुष्य द्वारा प्रकृति पर अधिकाधिक नियंत्रण का इतिहास है और दूसरा, यह मनुष्य के अधिकाधिक अलगाव का इतिहास है। मार्क्सवाद वर्ग-संघर्ष के आधार पर सर्वहारा के अधिनायकवाद अर्थात उत्पादन के साधनों पर उनके अधिकार का सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। आधुनिक औद्योगिक पूंजीवाद में पूंजीपति वर्ग द्वारा श्रमिक वर्ग का शोषण किया जाता है। मज़दूर को उसके श्रम के उत्पादन का बहुत छोटा हिस्सा मजदूरी के रूप में मिलता है। पूंजीपति उसके श्रम से मुनाफ़ा अर्जित करता है। इस प्रक्रिया में मज़दूर जीवन की निम्नतर दशाओं में जीवन-यापन को मजबूर हो जाता है। वह इस तरह के कार्य निरन्तर करता है जो उसकी इच्छा से अलग और विपरीत होते हैं। उत्पादन के साधन, कारखाने और मशीनें पूंजीपति के होते हैं। उत्पादन के लिए ज़रूरी कच्चे माल, पूंजी, उत्पादन-प्रक्रिया और उत्पादित वस्तुओं पर पूंजीपति का ही स्वामित्व होता है। इससे उसके मन में अपने ही कार्य के प्रति अरुचि की भावना पैदा हो जाती है जिसे 'अलगाव' की अवस्था कहा गया है। स्वयं व्यक्ति के प्रति अलगाव की यह भावना धीरे-धीरे उसमें अन्य सामाजिक क्रिया-कलापों और सम्बन्धों के प्रति भी अलगाव पैदा कर देती है और वह उत्पादित वस्तुओं, उत्पादन की प्रक्रिया और अपने साथियों और समाज के प्रति भी अलगाव महसूस करने लगता है। अत: अलगाव व्यक्ति की वह दशा है जिसमें उसके अपने कार्य दूसरों की शक्ति बन जाते हैं, जो उसके विरुद्ध हैं। यह एक निश्चित ऐतिहासिक अवस्था में मानवीय शोषण के कारण उत्पन्न दु:ख, गरीबी, अन्याय और अज्ञान का प्रतिफल है। यह पूंजीवाद में मनुष्य के निर्वैयक्तिकीकरण की प्रक्रिया है। इसी से सम्बद्ध अन्य अवधारणा है 'पण्यीकरण' या 'वस्तुकरण'। यह अलगाव की पराकाष्ठा है, जिसमें वस्तुओं का वैयक्तिकीकरण कर दिया जाता है, जो वस्तुपूजा के रूप में प्रकट होता है। इसके अनुसार पूंजीवाद में पूँजीपतियों के लिए मुनाफ़ा ही सर्वोपरि हो जाता है। मज़दूर को मानवीय स्थितियों से वंचित कर दिया जाता है, बल्कि उसे मात्र 'काम करने वाले हाथ' और श्रम-शक्ति में सीमित कर दिया जाता है। व्यक्ति को 'वस्तु' मान लिया जाता है, पण्य या माल में तब्दील कर दिया जाता है।

4.2.4. मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र

मार्क्सवाद के संस्थापकों ने साहित्य और कला के स्वरूप और सामाजिक भूमिका सम्बन्धी अनेक प्रश्नों के उत्तर देने की प्रक्रिया में सौन्दर्यशास्त्र का विकास किया है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती विचारकों की भाववादी सौन्दर्यशास्त्र सम्बन्धी समस्याओं को पूर्ण रूप से नए ढंग से सुलझाया। उन्होंने द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद के आधार पर कला की विषयवस्तु, रूप और सामाजिक भूमिका की व्याख्या की है। उनके अनुसार कला सामजिक चेतना का एक रूप है इसलिए इसके परिवर्तन के कारण मनुष्य के अस्तित्व के रूपों में ही निहित हैं।

मार्क्सवाद के अनुसार मनुष्य अन्य जीवों से श्रेष्ठ जीव है क्योंकि अन्य जीव अपनी आवश्यकताओं और भावों के अनुरूप ही उत्पादन करते हैं जबकि मनुष्य अन्य जीवों के भावों और आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पादन करने की क्षमता और इच्छा रखता है। मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियाँ उसके ज्ञान की संवाहक होती हैं और इस ज्ञान के समेकित आधारों पर हमारी चेतना का निर्माण होता है। मार्क्स के अनुसार मनुष्य की सारभूत शक्तियों के रूप में मानव को तृप्त करने में सक्षम पाँच ज्ञानेन्द्रियों सहित मानसिक और व्यावहारिक सभी ज्ञानेन्द्रियाँ या तो विकसित की जाती हैं अथवा उत्पन्न की जाती हैं।

मनुष्य के कलात्मक-सृजन की योग्यता मनुष्य समाज के दीर्घकालीन विकास के फलस्वरूप उपलब्ध हुई हैं और मनुष्य के परिश्रम की उपज हैं। एंगल्स ने अपनी रचना 'प्रकृति की द्वन्द्वात्मकता' में विचार प्रकट किया है कि "मनुष्य के हाथ ने वह उच्च कौशल हासिल कर लिया है, जिसके कारण राफ़ायल जैसी चित्रकारी, थोर्वाल्द्सेन जैसी मूर्तिकारी और पागानीनी जैसा संगीत पैदा हो सके।" इस प्रकार मार्क्स और एंगल्स ने मनुष्य की सौन्दर्यानुभूति को मनुष्य का सामाजिक रूप से अर्जित गुण माना है, जन्मजात गुण नहीं।

मार्क्सवाद में सौन्दर्यत्मक क्रिया-कलाप और परिघटनाओं को समाजैतिहासिक प्रक्रियाओं के रूप में व्याख्यायित किया जाता है। यह ऐसी व्यापक सभ्यतामूलक गतिविधि है जिसके द्वारा 'मनुष्य' (होमो सैपीयन्स) अपने विकास के साथ-साथ अपनी अन्तर्जात क्षमताओं को पहचानता है। कला-कृतियाँ मनुष्य की अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों के साथ अन्तर्निर्भरता के आधार पर घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई होती हैं। यह अन्तर्निर्भरता एक ओर समाज की वर्तमान संरचना पर तथा दूसरी ओर वर्तमान और भविष्य पर पड़ने वाले भूतकालीन सौन्दर्य-रूपों के प्रभाव पर आधारित होती है। कलाओं के सौन्दर्यात्मक पहलुओं में परिवर्तन विचारधारा में परिवर्तन के कारण होता है। विचारधाराओं का निर्धारण ऐतिहासिक रूप से वर्ग-विभक्त समाजों के विकास और अन्तर्विरोधों के स्वरूप के आधार पर होता है। अत: मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र को मानव इतिहास के विकास के अन्तर्गत ही समझा जा सकता है।

कला और यथार्थ के सम्बन्ध में मार्क्सवाद की मुख्य मान्यता यह है कि कला के वास्तविक स्वरूप और उसकी भूमिका को समग्र सामाजिक संरचना और सामाजिक सम्बन्धों के सन्दर्भ में ही पूरी तरह से विश्लेषित किया

जा सकता है। कलात्मक सौन्दर्य के सृजन में मनुष्य के श्रम की ऐतिहासिक भूमिका है। मनुष्य की सृजन -क्षमता और विश्व के सौन्दर्य को देखने-परखने की उसकी योग्यता मानव-समाज के सुदीर्घ विकास का फल और मानव-श्रम की अनुपम उपलब्धि है।

4.2.5. मार्क्सवादी साहित्य-चिन्तन

कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगल्स को विश्व साहित्य और कला-जगत् की बहुत अच्छी समझ थी। दोनों ने अपनी जवानी में कविताएँ लिखी थीं और एंगल्स तो कवि बनना भी चाहते थे। उनके विविध आयामी लेखन से पता चलता है कि उनमें साहित्य, संगीत और चित्रकला के प्रति रुचि और प्रेम था। उन्होंने अपने इस प्रेम और ज्ञान के आधार पर अपने वैचारिक लेखन को सुरुचिपूर्ण बनाने के साथ-साथ अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन में भी उनसे सहायता ली है।

मार्क्स और एंगल्स ने विश्व साहित्य के उपयोग से अपनी लेखन शैली को कलात्मक बनाया है तथा अपने विचारों को अधिक प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त किया है। उन्होंने प्राचीन मध्यकालीन और समकालीन लेखकों जैसे वर्जिल, प्लाउटस, पर्सियस, गोट्टफ्रीड फोन स्ट्रासबर्ग, वोल्फ्राम वोन एशेनबाख, बाल्ज़ाक, डिकेन्स, शिलर, हाइने, गेटे, शेक्सपीयर आदि की कृतियों का बहुत कुशलतापूर्वक उपयोग किया है। उन्हें बायरन और शेली जैसे क्रान्तिकारी स्वछन्दतावादी कवि बहुत प्रिय थे।

मार्क्सवादी साहित्य-चिन्तन कार्ल मार्क्स और फ्रेड्रिक एंगल्स के सामाजिक-आर्थिक सिद्धान्तों पर आधारित है। साहित्य या कला के सम्बन्ध में इनके लेखन में कोई व्यवस्थित सिद्धान्त नहीं मिलता है। अपने सामाजिक-आर्थिक विश्लेषण के दौरान ही इन्होंने विश्व साहित्य का अवगाहन किया, उनके गुण-दोषों को पहचाना और उनकी समाज सापेक्ष विवेचना की। वस्तुत: मार्क्सवादी साहित्य-दृष्टि का विकास मार्क्स-एंगल्स के सामाजिक-आर्थिक विचारों के आधार पर इन विचारों को माननेवाले आलोचकों और लेखकों ने किया है। यद्यपि इनकी व्याख्याएँ समकालीन वैचारिक चिन्तन से प्रभावित हैं और इनमें मार्क्स-एंगल्स के मूल विचारों के विकास के साथ-साथ उनकी उपेक्षा भी दृष्टिगोचर होती है। मार्क्स-एंगल्स के कला और साहित्य सम्बन्धी विचारों का प्रथम संकलन सन् 1933 में 'मार्क्स एंड एंगल्स: ऑन आर्ट एंड लिट्रेचर' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था, जिसके सम्पादक मिख़ाईल लिफ़्शित्ज़ थे। मार्क्सवादी साहित्य-सिद्धान्त के विकास के प्रारम्भिक प्रयासों में मेहरिंग, लुनाचार्स्की, प्लेखानोव, त्रोत्स्की और लेनिन के नाम उल्लेखनीय हैं।

4.2.5.1. मार्क्सवादी साहित्य-चिन्तन का प्रस्थान-बिन्दु

मार्क्सवाद के प्रणेताओं – मार्क्स और एंगल्स ने कला और साहित्य पर विशेष रूप से नहीं लिखा है। लेकिन उन्होंने मानव-जीवन के लिए अनिवार्य प्रश्नों के उत्तर खोजने के क्रम में जो अवधारणाएँ प्रस्तुत की हैं, उनमें वह पर्याप्त सामग्री है जो एक सुगठित कला एवं साहित्य-चिन्तन का आधार प्रस्तुत करती है। परवर्ती विचारकों ने

इसी आधार पर मार्क्सवादी कला एवं साहित्य-दृष्टि का विकास किया है। आइये देखें कि मार्क्सवादी साहित्य-चिन्तन का विकास कैसे हुआ और उसकी मुख्य विशेषताएँ क्या हैं।

कला का विकास भौतिक जगत् के विकास और समाज के इतिहास से जुड़ा हुआ है।

कला के रूप और गुण भौतिक जगत् के विकास और समाज के इतिहास के साथ विकसित और परिवर्तित होते रहते हैं। प्रत्येक ऐतिहासिक काल अपने अन्तर्निहित आदर्शों के अनुरूप कला-कृतियों का जैसा सृजन करता है, वैसा ही सृजन अन्य ऐतिहासिक अवस्थाओं में नहीं हो सकता, क्योंकि किसी भी विशेष कलात्मक रूप या साहित्यिक विधा के विकास और प्रचलन को मनुष्य के विकास का स्तर और सामाजिक ढाँचा ही तय करते हैं। मार्क्स ने लिखा है कि "क्या प्रकृति और सामाजिक सम्बन्धों के बारे में वह दृष्टिकोण, जो यूनानी कल्पना और इस कारण यूनानी कला के आधार में अन्तर्निहित है, ऐसे समय में सम्भव है जब स्वचालित तकुवे, रेलवे लाइनें, रेल इंजन और बिजली तार प्रणाली विद्यमान हों?"।

मनुष्य-जीवन की क्रान्तिकारी समझ का बीजारोपण मार्क्स और एंगल्स ने 'जर्मन विचारधारा' (1845-46) में कर दिया था :

"विचारों, सम्प्रत्ययों और चेतना की रचना आरम्भ में मनुष्य के भौतिक कार्यकलाप, भौतिक संसर्ग एवं वास्तविक जीवन की भाषा से सीधे-सीधे गूँथी हुई होती है। मनुष्य की परिकल्पना, चिन्तन तथा मानसिक संसर्ग इस स्तर पर भौतिक व्यवहार के प्रत्यक्ष परिणाम के रूप में प्रकट होते हैं। ... वास्तविक मनुष्य तक पहुँचने के लिए मनुष्य जो कहते हैं, कल्पना करते हैं, अनुमान लगाते हैं, हम उसे आधार बनाकर आगे नहीं बढ़ते हैं, न ही हम जिस रूप में उसका वर्णन किया जाता है, उसके बारे में सोचा जाता है, उसकी कल्पना की जाती है या अनुमान लगाया जाता है उस आधार पर आगे बढ़ते हैं ; बल्कि हम तो वास्तविक सक्रिय मनुष्य को अपनाकर आगे बढ़ते हैं ... जीवन चेतना द्वारा निर्धारित नहीं होता अपितु चेतना जीवन द्वारा निर्धारित होती है।"

इसी विचार को अधिक स्पष्टता के साथ मार्क्स ने 1859 में प्रस्तुत किया। मार्क्स के ग्रन्थ ' ए कंट्रीब्यूशन टू द क्रिटिक ऑफ़ पोलिटिकल इकोनॉमी'(1859) की भूमिका में प्रस्तुत ऐतिहासिक भौतिकवाद की आधारभूत स्थापना मार्क्सवादी साहित्य-चिन्तन का स्पष्ट सूत्र है :

"अपने जीवन के सामाजिक उत्पादन में मनुष्य ऐसे निश्चित सम्बन्धों में बन्धते हैं, जो अपरिहार्य एवं उनकी इच्छा से स्वतंत्र होते हैं। उत्पादन के ये सम्बन्ध उत्पादन की भौतिक शक्तियों के विकास की एक निश्चित मंज़िल के अनुरूप होते हैं। इन उत्पादन सम्बन्धों का पूर्ण योग ही समाज का आर्थिक ढाँचा है – वह असली बुनियाद है, जिस पर क़ानून और राजनीति का ऊपरी ढाँचा खड़ा हो जाता है और जिसके अनुकूल ही सामाजिक चेतना के निश्चित रूप होते हैं। भौतिक जीवन की उत्पादन-प्रणाली जीवन की आम सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक प्रक्रिया को निर्धारित करती है। मनुष्यों की चेतना उनके अस्तित्व को निर्धारित नहीं करती, बल्कि उनका सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना को निर्धारित करता है। ... आर्थिक बुनियाद के बदलने के साथ समस्त

वृहदाकार ऊपरी ढाँचा भी कमोबेश तेज़ी से बदल जाता है। ऐसे रूपान्तरणों पर विचार करते हुए एक भेद हमेशा ध्यान में रखना चाहिए। एक ओर तो, उत्पादन की आर्थिक परिस्थितियों का भौतिक रूपान्तरण है, जिसे प्रकृति विज्ञान की अचूकता के साथ निर्धारित किया जा सकता है। दूसरी ओर वे कानूनी, राजनीतिक, धार्मिक, सौन्दर्यबोधात्मक या दार्शनिक, संक्षेप में, विचारधारात्मक रूप हैं, जिनके दायरे में मनुष्य इस टक्कर के प्रति सचेत होते हैं और उससे निपटते हैं।"

यहाँ सामाजिक विकास के सन्दर्भ में 'आधार' और 'अधिरचना' के पारस्परिक सम्बन्धों का उद्घाटन ही मार्क्स का अभीष्ट है; कला और साहित्य सम्बन्धी विशिष्ट नियमों का विधान उनका लक्ष्य नहीं है। लेकिन अर्थ व्याप्ति की दृष्टि से कला एवं साहित्य सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर भी भौतिक उत्पादन तथा सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक प्रक्रिया के पारस्परिक सम्बन्धों में निहित हैं। इसलिए मार्क्स के ये विचार कला एवं साहित्य सम्बन्धी मार्क्सवादी दृष्टि के आधारभूत सन्दर्भ-संकेत हैं। मार्क्स-एंगल्स ने अपने कई पत्रों में विशेष रचनाओं और लेखकों पर महत्त्वपूर्ण टिप्पणियाँ की हैं। उन्होंने दर्शन, राजनीति और अर्थशास्त्र के अपने अध्ययनों को स्पष्ट करने के क्रम में विश्व-साहित्य-भंडार का भरपूर उपयोग किया है। मार्क्स-एंगल्स के इन्हीं प्रयासों के अन्तर्गत उनके कला एवं साहित्य सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है।

4.2.5.2. 'आधार' और 'अधिरचना' के पारस्परिक सम्बन्धों की समस्या

कला और साहित्य के सम्बन्ध में 'आधार' और 'अधिरचना' के पारस्परिक सम्बन्धों की दृष्टि से बात करते समय प्राय: यह मान लिया जाता है कि 'आधार' या आर्थिक परिस्थिति के बदलते ही उसके अनुरूप 'अधिरचना' के अंग कला और साहित्य भी तुरंत बदल जाते हैं। मार्क्सवाद की सही समझ इस भ्रम का निवारण करती है।

मार्क्स ने 'अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त' में लिखा है कि "भौतिक उत्पादन के विशिष्ट रूप से सबसे पहले समाज का खास ढाँचा, दूसरे, प्रकृति के साथ लोगों का खास सम्बन्ध जन्म लेते हैं। उनकी राज्य-संरचना तथा उनका आत्मिक दृष्टिकोण दोनों से निर्धारित होते हैं। इसलिए इससे उनके आत्मिक सृजन का प्रकार भी निर्धारित होता है।"

21-22 सितंबर,1890 को जो. ब्लोख़ को एक पत्र में एंगल्स ने लिखा है कि "इतिहास की भौतिकवादी धारणा के अनुसार इतिहास का अन्तिम विश्लेषण में निर्णायक तत्त्व वास्तविक जीवन का उत्पादन और पुनरुत्पादन है। इससे अधिक न मार्क्स ने और न मैंने ही कभी कहा है। अत: यदि कोई इसे तोड़-मरोड़कर यों कहे कि आर्थिक तत्त्व ही एकमात्र निर्णायक तत्त्व है, तो वह हमारी प्रस्थापना को निरर्थक, अमूर्त और खोखली शब्दावली मात्र बना देता है। आर्थिक परिस्थिति बुनियाद है, पर ऊपरी ढाँचे के विविध तत्त्व ... ऐतिहासिक संघर्ष के प्रक्रम पर अपना प्रभाव डालते हैं और बहुत जगह तो संघर्ष के रूप के निर्धारण में इनका ही पलड़ा भारी रहता है।" स्पष्ट है कि मार्क्सवाद के अनुसार किसी भी युग को समझने के लिए आर्थिक सम्बन्धों को समझना आवश्यक है , लेकिन

कला या साहित्य को उसका प्रतिबिम्ब मान लेना ग़लत है। सामाजिक जीवन की परिस्थितियाँ संश्लिष्ट रूप में कलाओं में अभिव्यक्त होती हैं, साहित्य और कलाएँ उनकी छायामात्र नहीं हैं, वे सापेक्ष रूप से स्वतंत्र हैं। मार्क्सवाद कला को आर्थिक आधार की निष्क्रिय उपज नहीं मानता है। उसके अनुसार कलात्मक सृजन सहित सामाजिक चेतना के सभी रूप उस सामाजिक यथार्थ पर सक्रिय प्रभाव डालते हैं जिससे उनका आविर्भाव होता है।

मार्क्सवाद के अनुसार कलात्मक सृजन का आर्थिक विकास से गहरा सम्बन्ध होता है और सामाजिक परिवर्तन का प्रभाव कलात्मक सृजन पर पड़ता है ; लेकिन यह सब सीधे-सीधे यांत्रिक रूप से नहीं होता है। ध्यान देने की बात है कि मार्क्सवाद में कलाकृतियों को भौतिक और आर्थिक कारकों का प्रतिबिम्बमात्र नहीं माना गया है। मार्क्सवाद के संस्थापकों ने मानव-चेतना के कलात्मक तत्त्वों को सामाजिक विकास में बहुत महत्त्वपूर्ण माना है तथा सामाजिक परिवर्तन की दिशा का निर्धारण करने में उनकी भूमिका को स्वीकार किया है।

मार्क्स के अनुसार यह ज़रूरी नहीं है कि महान् कलात्मक उपलब्धियाँ उत्पादन शक्तियों के उच्चतम विकास पर निर्भर हो। यूनान के उदाहरण से स्पष्ट है कि आर्थिक रूप से अविकसित समाज में बड़ा कलात्मक-सृजन हुआ। मार्क्स का प्रश्न है कि यूनानी कला और महाकाव्य हमें आज भी सौन्दर्यात्मक आनन्द प्रदान करते हैं और कुछ मामलों में तो उन्हें मानक और अलभ्य प्रारूप माना जाता है ; ऐसा क्यों ? मार्क्स कहता है कि वह मानव जाति का ऐतिहासिक बाल्यकाल था, जहाँ उसने अपना सबसे सुन्दर रूप पाया; वह अवस्था फिर लौट कर नहीं आ सकती, हमारे आनन्द का स्रोत यह अनुभूति ही है। उनकी कला के प्रति हमारे आकर्षण और उस समाज की अपरिपक्व अवस्था जिसमें उसका जन्म हुआ, इन दोनों बातों में कोई अन्तर्विरोध नहीं है। हमारे आकर्षण का कारण उस समाज की वह अवस्था है जिसके अन्तर्गत इस कला ने जन्म लिया और केवल उसके अन्तर्गत ही वह जन्म ले सकती थी; और इसकी फिर कभी पुरावृत्ति नहीं हो सकती। उसका तर्क है कि यूनानी लोग महान् कला का सृजन अपने अविकसित समाज के बावजूद नहीं, बल्कि उस समाज के कारण ही कर पाए।

तो क्या यूनानी कलाओं के प्रति हमारा आकर्षण मासूम बचपन की मीठी यादभर है ? इस पर मार्क्स की व्याख्या है कि कला-कृतियों को विशेष सामाजिक अवस्थाओं तथा सम्बन्धों का प्रतिबिम्ब मानते समय उन विशेषताओं पर ध्यान देना ज़रूरी है जो इन कृतियों के शाश्वत मूल्य हैं। इन मूल्यों के कारण ही ऐतिहासिक रूप से भिन्न सामाजिक अवस्था की उपज होकर भी ये कला-कृतियाँ सदैव अपना महत्त्व बरकरार रखती हैं।

इस प्रकार, मार्क्सवाद के अनुसार साहित्य को समझने का अर्थ उस सम्पूर्ण सामाजिक प्रक्रिया को समझना है जिसका वह हिस्सा है। साहित्यिक रचनाओं का आधार कोई रहस्यमयी प्रेरणा नहीं होती है और न ही उन्हें लेखक के मनोजगत् की उपज मान कर ही समझा जा सकता है। वस्तुत: साहित्य और कलाएँ दुनिया को देखने के विशेष दृष्टिकोण होती हैं और उनका अपने युग के प्रभुत्वशाली वर्ग के दृष्टिकोण अर्थात् 'विचारधारा' के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। यह विचारधारा उस युग के वास्तविक सामाजिक सम्बन्धों की उपज होती है जिसमें मनुष्य रहता है।

4.2.5.3. साहित्य और विचारधारा

मार्क्सवाद की एक मुख्य स्थापना यह है कि समाज के आर्थिक 'आधार' पर उसकी 'अधिरचना' खड़ी होती है। 'अधिरचना' में क़ानून, राजनीति अर्थात् एक राज्य का शासन होता है, जिसका कार्य आर्थिक उत्पादन के साधनों का स्वामित्व रखने वाले सामाजिक वर्ग की शक्तियों को मान्यता प्रदान करना है। लेकिन 'अधिरचना' में कई और तत्त्व भी शामिल होते हैं। इनमें सामाजिक चेतना के ख़ास रूप, जैसे राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक, सौन्दर्यशास्त्रीय आदि, भी शामिल होते हैं। इन्हें मार्क्सवाद में 'विचारधारा' कहा जाता है। 'विचारधारा' का कार्य भी समाज में शासक वर्ग के हितों की रक्षा करना होता है। समाज के प्रमुख विचार उसके शासक वर्ग के विचार ही होते हैं। 'विचारधारा' ऊपरी संरचना का वह भाग है जो यह सुनिश्चित करता है कि जिस सामाजिक परिस्थिति में एक वर्ग समाज के दूसरे वर्ग पर अधिकार करता है अर्थात् उसका शोषण करता है, उसे समाज के अधिकांश लोगों द्वारा या तो स्वाभाविक माना जाए या उस ओर बिल्कुल ध्यान न दिया जाए। कला और साहित्य समाज के ऊपरी ढाँचे अर्थात् 'अधिरचना' के अन्तर्गत 'विचारधारा' का भाग है।

मार्क्सवाद में कला को वर्गों के बीच विचारधारात्मक संघर्ष का प्रमुख अस्त्र माना जाता है। कला यदि शोषकों के हाथों वर्ग-उत्पीड़न का साधन बन सकती है तो वह जनसाधारण में उस उत्पीड़न के प्रति संघर्ष की चेतना का विकास करने में भी सहायक हो सकती है। एंगल्स ने 'लुडविग फायरबाख़ और क्लासिकीय जर्मन दर्शन का अन्त' (1888) में यह लक्षित किया है कि कला राजनीतिक और आर्थिक सिद्धान्त से कहीं अधिक मूल्यवान और गूढ़ है क्योंकि यह पूर्णरूप से विचारधारात्मक कम ही होती है। इसका आशय यह है कि विचारधारा के साथ कला का सम्बन्ध क़ानून और राजनीतिक सिद्धान्त से अधिक जटिल होता है जो कि अधिक स्पष्ट रूप से शासक वर्ग के हितों को अभिव्यक्त करते हैं। आइए, कला और विचारधारा के इस जटिल सम्बन्ध पर कुछ विस्तार से विचार करें।

प्रत्येक सामाजिक प्रक्रिया के दो पहलू होते हैं – एक तो वह जो मौजूदा हालात बनाए रखने और समाज की गतिविधियों को पारम्परिक ढंग से चलते रहने में सहायता करता है, और दूसरा वह जो परिस्थितियों को बदलने की सम्भावनाओं से भरा होता है। ये दोनों पहलू उत्पादन की पद्धति में अन्तर्निहित होते हैं। अपने वर्ग-हितों की रक्षा के लिए उस वर्ग को यथास्थिति बनाए रखने के लिए विद्यमान व्यवस्था को मानना होता है। व्यक्तिगत विचारों या अभिमतों को महत्त्व दिये जाने से वर्गीय एकता ख़तरे में पड़ जाती है। विचारधारा वर्ग-हितों को सुरक्षित रखने लिए उस वर्ग के सदस्यों को एकजुट रखने का माध्यम बनती है। यथास्थितिवादी और परिवर्तन के लिए संघर्षरत वर्गों में विचारधारात्मक संघर्ष तब तक चलता रहता है जब तक उत्पीड़ित वर्ग अपने पक्ष में इतिहास की गति को मोड़ने में समर्थ नहीं हो जाता।

मार्क्सवाद के अनुसार अब तक के सभी समाज शोषक और शोषित वर्गों में बंटे हुए समाज हैं। शोषक वर्ग अपने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक आधिपत्य को सही साबित करने के लिए अनेक कारण और तर्क प्रस्तुत करता है। इन तर्कों और कारणों की व्यवस्था से, जिसमें इस वर्ग के विश्वास, मूल्य और आदर्श शामिल

होते हैं, शासक (शोषक) वर्ग की विचारधारा का निर्माण होता है। मार्क्स-एंगल्स ने 'जर्मन विचारधारा' में लिखा है कि "सत्ताधारी वर्ग के विचार हर युग में सत्ताधारी विचार हुआ करते हैं : अर्थात् जो वर्ग समाज की सत्ताधारी भौतिक शक्ति होता है, वह साथ ही उसकी सत्ताधारी बौद्धिक शक्ति भी होता है। ... सत्ताधारी विचार प्रभुत्वशाली भौतिक सम्बन्धों की, यानी विचारों के रूप में ग्रहण किए जाने वाले प्रभुत्वशाली भौतिक सम्बन्धों की बौद्धिक अभिव्यक्ति के अलावा और कुछ नहीं होते ; ... अमुक वर्ग का शासन कतिपय विचारों का शासन मात्र है, इस सारे भ्रम का निस्संदेह उस समय स्वाभाविक अन्त हो जाता है , जब वर्ग-शासन आम तौर पर समाज के संगठन के रूप में ख़त्म हो जाता है, अर्थात् ज्यों ही किसी विशेष हित को सामान्य हित के अथवा "सामान्य हित" को सत्ताधारी हित के रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं रह जाता।"

वर्ग-विहीन समाज के निर्माण में विचारधारा की इस क्रान्तिकारी भूमिका में यह तथ्य अन्तर्निहित है कि विचारधारा समाज के अन्तर्विरोधी अनिवार्य सम्बन्धों को छुपा देती है क्योंकि यह वास्तविकता के उस पक्ष पर आधारित है जो अनिवार्य सम्बन्धों का विलोम प्रकट करती है।

वर्ग-संघर्ष तीव्र होने की दशा में शासक-वर्ग की विचारधारा की खुली आलोचना शुरू हो जाती है और शासित वर्ग अपने राजनीतिक विचार दृढ़ता के साथ सामने लाता है। इन विचारों के पीछे दृढ़ सैद्धान्तिक आधार होता है और ये विचार इस वर्ग की वर्ग-विचारधारा बन जाते हैं। अब दोनों वर्गों के बीच विचारधारात्मक संघर्ष शुरू हो जाता है।

वर्ग-संघर्ष की तीव्रता के दौर में समाज के सभी वर्ग राजनीतिक विचारों के रूप में अपनी-अपनी विचारधारा को आगे बढ़ाते हैं। यह बात उत्पादन-प्रणाली के अन्तर्विरोधों को छुपाने वाली सामाजिक विचारधारा के अस्तित्व के सम्बन्ध में भ्रम पैदा करती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि एक वर्ग-चेतना के निर्माण और इसकी विचारधारा के बीच निकट सम्बन्ध होता है । वर्ग-चेतना को समाज की सत्ताधारी विचारधारा की विरोधी विचारधारा के रूप में देखा जा सकता है।

ग्योर्गी लूकाच सर्वहारा वर्ग की वर्ग-चेतना और बुर्जुआ वर्ग, जिसके बीच उन्हें रहना है, के मध्य अन्तर का सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। लूकाच के लिए 'विचारधारा' समाज में 'मिथ्या चेतना' का एक रूप है। यह तब पैदा होती है जब एक वर्ग (शासक वर्ग) की विचारधारा को पूरे समाज की वास्तविक विचारधारा मान लिया जाता है। यह केवल अच्छे या ख़राब निर्णय का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह ऐतिहासिक भौतिकवाद की आधारभूत द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया की अनदेखी करना है । वर्ग विभाजित समाज में सर्वहारा वर्ग के सदस्य का जीवन बुर्जुआ विचारधारा से बहुत प्रभावित होता है। कठिनाई यह है कि समाज में वर्ग-संघर्ष तो वैचारिक रूप ले लेता है लेकिन 'मिथ्या चेतना' के प्रभाव में आए सर्वहारा वर्ग के लिए इस वैचारिक संघर्ष को जीत पाना मुश्किल हो जाता है। लूकाच के अनुसार इसका कारण समाज में इस 'मिथ्या चेतना' की व्यापकता है कि बुर्जुआ वर्ग की विचारधारा समाज में सब जगह व्याप्त है और प्रभावशाली है। अपने वर्ग की वर्ग-चेतना ही वह तरीक़ा है जिससे सर्वहारा वर्ग शासक वर्ग के विरुद्ध अपनी वैचारिक लड़ाई जीत सकता है।

अंतोनियो ग्राम्शी ने समाज के विचारधारात्मक संघर्ष को 'वर्चस्व' की अवधारणा के माध्यम से समझने की कोशिश की है। वह इस अवधारणा को समाज के 'वैचारिक वर्चस्व' के तौर पर प्रस्तुत करता है। 'वर्चस्व' का निर्माण समाज की 'अधिरचना' के अन्तर्गत होता है। इसमें शासक वर्ग द्वारा समाज के अन्य वर्गों के साथ इस तरह से सम्बन्ध स्थापित किए जाते हैं जिससे विचारधारात्मक रूप से प्रभुत्वशाली यह वर्ग सहमति का निर्माण कर सके और उसके आधार पर शासन कर सके। एक स्तर पर 'वर्चस्व' सहमति और सर्वसम्मति के सांस्थानिक रूपों, जैसे – विश्वविद्यालय, राज्य नौकरशाही, व्यापारिक निगम, राजनीतिक दल आदि के माध्यम से कार्य करता है। इस कार्य में प्रभुत्वशाली वर्ग से सम्बद्ध बुद्धिजीवियों और पेशेवर लोगों का सहयोग भी रहता है। दूसरे स्तर पर राज्य का बल होता है जो जनता में 'वर्चस्व' कायम करता है। ग्राम्शी का सुझाव है कि वर्चस्व के इस सर्वव्यापी तंत्र का मुक़ाबला करने के लिए प्रति-वर्चस्व का तंत्र उसी पैमाने पर श्रमिक वर्ग के कार्यकर्ताओं और बुद्धिजीवियों द्वारा खड़ा किया जाना चाहिए। यहाँ वह बौद्धिक क्रियाशीलता का मूलभूत परिवर्तनकारी विचार प्रस्तुत करता है। सर्वहारा वर्ग को अपना 'वर्चस्व' क़ायम करने के लिए 'पद-प्रतिष्ठा' की लड़ाई में जुटना पड़ता है, जहाँ श्रमिक वर्ग के बुद्धिजीवी एक नई विचारधारा पेश करते हैं और इसके लिए समाज के अन्य वर्गों तथा सामाजिक शक्तियों का समर्थन प्राप्त करते हैं।

लुईस अल्थुसे विचारधारा को व्यक्ति और समाज के आपसी रिश्तों के एक भाग की तरह व्याख्यायित करता है। उसके अनुसार विचारधारा प्रातिनिधिकों की एक व्यवस्था है जिसका सुनिश्चित इतिहास है तथा उसकी समाज में एक भूमिका है। इसका तात्पर्य यह है कि लोग विचारधारा के माध्यम से सचेत रूप में सामाजिक व्यवहार करते हैं, जबकि विचारधारा स्वयं अचेतन है। अल्थुसे वर्ग रहित समाज में भी विचारधारा की आवश्यकता मानता है क्योंकि उसके अनुसार तब भी लोगों को समाज से सम्बन्ध स्थापित करने की ज़रूरत होगी, यद्यपि इस तरह के सम्बन्ध में अन्तर्विरोध नहीं होगा। अल्थुसे ने हमारा ध्यान उन तरीकों की तरफ़ दिलाया है जिनके अन्तर्गत विचारधारा समाज में कार्य करती है, विशेष रूप से राज्य के संरक्षण और उन क्षेत्रों में जिन्हें सुरक्षित एवं तटस्थ माना जाता है। ये विचारधाराएँ लौकिक आचरण के तौर पर दिखाई देती हैं और समाज में अस्तित्व की सर्वाधिक स्वाभाविक दशाओं की तरह स्वीकार की जाती हैं। समाज में गहराई से स्थापित सामाजिक सरंचनाएँ विचारधारा के दमनकारी रूप को प्रचलित और लोकप्रिय परम्पराओं के आवरण में छुपा देती हैं। अल्थुसे का विशेष ध्यान राज्य के विचारधारात्मक उपकरणों की तरफ़ है। इन उपकरणों का ज्ञान और उनका वर्ग-सम्बन्ध हमें उनके स्थान पर विचारधारात्मक बन्धन और ग़ुलामी से मुक्ति प्रदान करने वाले नए उपकरण स्थापित करने की शक्ति और योग्यता प्रदान करता है। शासक वर्ग की विचारधारा अनेक स्तरों पर अनेक रूपों में कार्य करती है। हमें इसके वास्तविक कार्यों को सावधानी से देखने-समझने की ज़रूरत है।

संक्षेप में, विचारधारा का अर्थ समाज के विभिन्न वर्गों के सामान्य दृष्टिकोण या जीवन और जगत् की उनकी समझ से है। मार्क्स के अनुसार जो वर्ग अधिकार के लिए संघर्ष कर रहा है उसे अपने हितों को सभी के सामान्य हित के तौर पर प्रस्तुत करने के लिए राजनीतिक सत्ता प्राप्त करनी होती है। मार्क्सवाद में विचारधारा की अवधारणा का यह मूल बीज है। सत्ताधारी वर्ग अपने विचारों को सम्पूर्ण समाज के विचारों के तौर पर पेश करता

है। आधुनिक राज्य बुर्जुआ वर्ग के आम कार्यों और गतिविधियों की व्यवस्थापक समिति से अधिक कुछ भी नहीं है। अत: विचारधारा किन्हीं परिभाषित नियमों का कोई समूह नहीं है। यह वर्ग-विभाजित समाज में मनुष्य के जीने के तरीकों से सम्बन्धित एक धारणा है। इसमें वर्ग विशेष के सदस्यों के विचार, मूल्य और जीवन-व्यापार शामिल हैं जो उन्हें अपने वर्ग के सामाजिक प्रकार्यों से जोड़े रखते हैं और इस तरह समग्र समाज के वास्तविक ज्ञान से उन्हें दूर रखते हैं। विचारधारा वह शक्ति है जो समाज को उसके विद्यमान रूप में बने रहने का आधार प्रदान करती है, जबकि समाज के वास्तविक स्वरूप में कई अन्तर्विरोध होते हैं। मनुष्य अलग-अलग वैयक्तिकताओं के साथ अपनी अलग-अलग पहचान रखते हैं, लेकिन उत्पादन और वितरण के ढंग के आधार पर वे एक सामूहिक पहचान बनाते हैं जिसे 'वर्ग' कहा जाता है। व्यक्तियों की सोच से हटकर एक वर्ग के सदस्य के रूप में उनकी सामान्य सोच एक जैसी होती है। यह उनकी 'विचारधारा' है।

4.2.5.4. अन्तर्वस्तु और रूप

साहित्य और विचारधारा के पारस्परिक सम्बन्धों पर विचार करते समय हमने देखा कि मार्क्सवाद में विचारधारा को समाज के विभिन्न वर्गों के सामान्य दृष्टिकोण या जीवन और जगत् की उनकी समझ माना गया है। यह वर्ग-विभाजित समाज में मनुष्य के जीवन यापन के तौर-तरीकों से सम्बन्धित एक धारणा है। विचारधारा को हम अपने समय के वस्तु-सत्य को जानने, समझने और ग्रहण करने के ढंग के रूप में भी समझ सकते हैं। समाज का बाह्य रूप उसके असली रूप से अलग है, यह विचार ही 'विचारधारा' की प्राथमिक समझ है। मार्क्स ने लिखा है कि " यदि वस्तु का बाह्य रूप और अन्तर्वस्तु प्रत्यक्ष रूप से एक जैसे हो जाए तो सभी विज्ञान निरर्थक हो जाएँगे।" रूप और अन्तर्वस्तु प्रत्येक वस्तु में निहित हैं, इसलिए इन दोनों को पृथक् नहीं किया जा सकता है। वास्तव में तो अन्तर्वस्तु जैसी कोई चीज़ ही नहीं है, जो भी है वह आकृति अर्थात् रूप युक्त अन्तर्वस्तु है। अन्तर्वस्तु की एक निश्चित आकृति या रूप होता है। अत: अन्तर्वस्तु से अलग रूप का कोई अस्तित्व नहीं होता है।

अन्तर्वस्तु और रूप के सम्बन्ध में मूल स्थापना यह है कि ये दोनों किसी भी कलाकृति का अभिन्न अंग हैं और अन्योन्याश्रित हैं। दोनों तत्त्वों का सापेक्षिक महत्त्व है। यद्यपि अन्तर्वस्तु की प्राथमिकता असंदिग्ध है, तथापि रूप निष्क्रिय तत्त्व नहीं है। मार्क्सवादी चिन्तन में आर्थिक वास्तविकता को स्थापित करने की प्राथमिकता के कारण रूप के महत्त्व पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा सका। इस सन्दर्भ में एंगल्स ने फ्रांज़ मेहरिंग को एक पत्र में लिखा है कि "उस बात पर मार्क्स ने और मैंने कभी अपनी रचनाओं में पर्याप्त बल नहीं दिया और उसके सम्बन्ध में हम सभी समान रूप से दोषी हैं। अर्थात हमने प्रथमत: मुख्य ज़ोर इस बात पर दिया – और हमारा यह ज़ोर देना लाज़िमी था – कि राजनीतिक, विधिशास्त्रीय एवं अन्य विचारधारात्मक धारणाओं के माध्यम से उत्पन्न होने वाली क्रियाएँ मूलभूत आर्थिक वास्तविकता से उद्भूत होती हैं। किन्तु ऐसा करते हुए हमने रूपपक्ष की – उन मार्गों और विधियों की, जिनके ज़रिये ये धारणाएँ आदि आविर्भूत होती हैं – विषय-वस्तु की ख़ातिर उपेक्षा की। इसने हमारे विरोधियों को ग़लतफ़हमी पैदा करने और तोड़ने-मरोड़ने का बढ़िया सुयोग दिया।"

मार्क्स के अनुसार रूप जब तक अपनी अन्तर्वस्तु का रूप नहीं है तब तक उसका कोई महत्त्व नहीं है। एक कलाकृति का रूप वे सभी कलात्मक साधन हैं जो सामंजस्यपूर्ण ढंग से मिलकर उसका निर्माण करते हैं। कलाकृति का महत्त्व रूप और अन्तर्वस्तु के सामंजस्य और संगति पर निर्भर करता है। रूप कलाकार की संपत्ति है, उसका व्यक्तित्व है और शैली कलाकृति पर कलाकार के व्यक्तित्त्व का प्रभाव परिलक्षित करती है। ऐतिहासिक दृष्टि से रूप जिस तरह की अन्तर्वस्तु को धारण करता है, रूप का निर्धारण उसी आधार पर होता है। जिस तरह अन्तर्वस्तु में परिवर्तन होता है, अन्तर्वस्तु के रूप में भी उसी अनुरूप परिवर्तन होता है। इस प्रकार, अन्तर्वस्तु का अस्तित्व रूप से पहले है। जिस तरह समाज की भौतिक अन्तर्वस्तु - उत्पादन प्रणाली - उसकी अधिरचना का निर्धारण करती है, उसी तरह कलात्मक अन्तर्वस्तु कला-कृति के रूप का निर्धारण करती है।

रूप और अन्तर्वस्तु द्वन्द्वात्मक अन्त:क्रिया में परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्ध रहते हैं। अर्न्स्ट फिशर के शब्दों में "कला में किसी चीज़ को रूप ही दिया जाता है और रूप ही किसी चीज़ को कलाकृति बनाता है।" राल्फ़ फॉक्स ने 'उपन्यास और लोक-जीवन' (1937) में लिखा है कि "रूप की रचना अन्तर्वस्तु द्वारा की जाती है, वह उसके समान और उससे एकाकार होती है, यद्यपि प्राथमिकता अन्तर्वस्तु को दी जाती है, लेकिन रूप अन्तर्वस्तु के प्रति प्रतिक्रिया करता है, वह कभी निष्क्रिय नहीं रहता।" लेयोन त्रोत्स्की का कथन है कि "अन्तर्वस्तु और रूप के पारस्परिक सम्बन्ध इस तथ्य से निर्धारित होते हैं कि नए रूप की खोज, घोषणा और उद्भव एक आन्तरिक ज़रूरत, और एक सामूहिक मनोवैज्ञानिक माँग के दबाव में होता है तथा अन्य चीजों की तरह इसकी जड़ें भी समाज में हैं।" त्रोत्स्की की मान्यता है कि रूप अपने आन्तरिक दबावों से उभरता है और उसमें पर्याप्त स्वायत्तता का गुण भी होता है। वह वैचारिक दबावों की दिशा में आसानी से नहीं मुड़ता है। गियोर्गी प्लेखानोव के अनुसार लोगों की सौन्दर्य की धारणा ऐतिहासिक विकास के साथ बदलती रहती है। कला का कोई निरपेक्ष मानदण्ड नहीं होता, लेकिन कला का वस्तुगत मानदण्ड होता है और वह रूप और अन्तर्वस्तु के सामंजस्य में निहित होता है। किसी भी कलाकृति की सफलता उसमें अभिव्यक्त रूप और विचार की संगति पर निर्भर होती है। कला का रूप उसकी अन्तर्वस्तु से मेल खाना चाहिए, यह नियम सभी तरह की कलाओं पर लागू होता है।

4.2.6. पाठ का सारांश

कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगल्स को मार्क्सवाद के संस्थापक माना जाता है। इन दोनोंने अपने आर्थिक विचारों को कम्युनिज़्म कहा है। इनके सिद्धान्तों को 'मार्क्सवाद' के रूप में बाद के चिन्तकों ने प्रस्तुत किया। मार्क्सवाद दार्शनिक, आर्थिक और राजनीतिक-सामाजिक विचारों की एक पद्धति है, जो इतिहास की द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक व्याख्या करके मानव-समाज के विकास को समझने हेतु एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। मार्क्सवाद का केन्द्रीय चिन्तन सामूहिक सामाजिक कार्यवाही के द्वारा विश्व को बदलना है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की मुख्य स्थापना यह है कि यह जगत् भौतिक है, उसमें भूतद्रव्य या पदार्थ और उसकी गति तथा परिवर्तन के नियमों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वह प्रत्ययों की सत्ता को अस्वीकार करता है। इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के अनुसार समाज की संरचना 'आधार' और 'अधिरचना' से मिलकर हुई

है। 'आधार' में परिवर्तन होने पर ही 'अधिरचना' में परिवर्तन होता है, क्योंकि 'अधिरचना' आधार पर निर्भर होती है।

मार्क्सवाद में विचारधारा को समाज के विभिन्न वर्गों के सामान्य दृष्टिकोण के रूप में देखा गया है अर्थात् यह समाज में मनुष्य के जीने के तरीकों से सम्बन्धित एक धारणा है। मार्क्सवाद में कला को वर्गों के बीच विचारधारात्मक संघर्ष का प्रमुख अस्त्र और सौन्दर्यत्मक परिघटनाओं को समाज के विकास की ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के रूप में व्याख्यायित किया जाता है। कलात्मक सौन्दर्य का सृजन मनुष्य के श्रम की ऐतिहासिक उपज है। मार्क्सवादी आलोचना में 'रूप' और 'अन्तर्वस्तु' के बीच एक द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध माना जाता है। रूप और अन्तर्वस्तु परस्पर द्वन्द्वात्मक अन्त:क्रिया में परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्ध रहते हैं। लेकिन अन्ततोगत्वा 'अन्तर्वस्तु' ही 'रूप' का निर्धारण करती है। मार्क्सवाद के अनुसार साहित्य को समझने का अर्थ उस सम्पूर्ण ऐतिहासिक प्रक्रिया और सामाजिक गठन को समझना है जिसका वह हिस्सा है।

4.2.7. उपयोगी पुस्तकें और सन्दर्भ

4.2.7.1. हिन्दी की पुस्तकें

1. क्रिलोव, ब. (1981). मार्क्स एंगल्स : साहित्य तथा कला. मास्को. प्रगति प्रकाशन.
2. जैन, निर्मला.(2013). पाश्चात्य साहित्य चिन्तन. नई दिल्ली. राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड. ISBN : 978-81-8361-607-2
3. फिशर, अंर्स्ट. अनुवाद: उपाध्याय, रमेश.(1990). कला की जरूरत. नई दिल्ली. राजकमल प्रकाशन. ISBN :81-7178-093-8
4. मिश्र, शिवकुमार. (2010). मार्क्सवादी साहित्य-चिन्तन : इतिहास तथा सिद्धान्त. नई दिल्ली. वाणी प्रकाशन. ISBN : 978-93-5000-464-7

4.2.7.2. अंग्रेज़ी पुस्तकें

1. Abrams, M.H. and Harpham, Geoffrey Galt. (2015). A Glossary of Literary Terms,11e. Delhi. Cengage Learning. ISBN-13: 978-81-315-2635-4
2. Baxandall, Lee & Morawski, Stefan. (1973). Marx & Engles on Literature & Art, A selection of Writings. Missouri, USA. Telos Press. ISBN : 0-914386-02—06
3. Bottomore, Tom. (1991). A Dictionary of Marxist Thought,2e. Oxford, UK. ISBN-13: 978-0-631-18082-1
4. Eagleton, Terry. (1976). Marxism and Literary Criticism. Berkley, California. University of California Press. Blackwell Publishing. ISBN : 978-0-520=03243-9

5. Eagleton, Terry and Milne, Drew.(1996). Marxist Literary Theory. California. Blackwell Publishers. ISBN : 978-0-520=03243-9
6. Habib, M. A. R. (2005) . A History of Literary Criticism: From Plato to the Present. Malden, USA. Blackwell Publishing. ISBN-13: 978-0-631-23200-1
7. Williams, Raymond. (1977). Marxism and Literature. Oxford. Oxford University Press. ISBN : 13-978-0-19-958682-0

4.2.7.3. इंटरनेट स्रोत

1. http://www.britannica.com/topic/Marxism
2. http://www.marxists.org/subject/art/lit_crit/

4.2.8. अभ्यास के लिए प्रश्न

01. "अब तक के सभी समाजों का इतिहास वर्ग-संघर्ष का ही इतिहास है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
02. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त को समझाइए।
03. ऐतिहासिक भौतिकवाद की मुख्य स्थापनाओं पर टिप्पणी कीजिए।
04. आधार और अधिरचना के सम्बन्धों पर प्रकाश डालिए।
05. 'मिथ्या चेतना' से क्या अभिप्राय है ?
06. 'अलगाव' की स्थिति का श्रमिक वर्ग पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
07. साहित्य-सृजन में विचारधारा के महत्त्व और भूमिका को समझाइए।
08. साहित्य में 'अन्तर्वस्तु' और 'रूप' के सम्बन्धों की व्याख्या कीजिए।
09. ग्राम्शी की 'वर्चस्व' की अवधारणा क्या है ?
10. 'विचारधारा' के स्वरूप और भूमिका के सम्बन्ध में अल्थुसे के विचारों की समीक्षा कीजिए।

❖❖❖